IJRAR.ORG E-ISSN: 2348-1269, P-ISSN: 2349-5138
INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS (IJRAR) | IJRAR.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रवादी चेतना

''राष्ट्रवाद मानव मस्तिष्क की एक अचेतन प्रक्रिया का ही परिणाम है।''

– सच्चिदानन्द सिन्हा

[1]डॉ. अरुण देव जायसवाल [2]जसवन्त सिंह
[1]शोध–निर्देशक व एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी) [2]शोधार्थी (हिंदी)
[1]साहू जैन (पी.जी.) कॉलेज, नजीबाबाद (बिजनौर), उ.प्र.
[2]महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली

शोध सारः प्रस्तुत शोध पत्र में जयशंकर प्रसाद जी की राष्ट्र एवं राष्ट्रवादी अवधारणा का संक्षेप में वर्णन किया गया है। जयशंकर प्रसाद जी एक असाधारण प्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व वाले लेखक थे। अनुसंधानकर्ता उनके नाटकों, कृतियों, लेखों और जनमानस के प्रति उनके विचारों एवं अवधारणाओं से अत्यंत प्रभावित हुआ। जिसके फलस्वरूप अनुसंधानकर्ता द्वारा यह शोध पत्र जयशंकर जी का साहित्य में अमिट योगदान का वर्णन व्याख्यात्मक रूप में करता है तथा उनके राष्ट्रवाद के विषय में विचारों एवं अवधारणाओं से सभी को अवगत कराने की चेष्टा मात्र है। जयशंकर प्रसाद जी ने बड़े ही सहज एवं सरल स्वभाव के साथ अपने लेखों में राष्ट्रवाद का वर्णन इस प्रकार किया है, कि पढ़ने वाला का व्यक्तित्व स्वयं अनेक सामाजिक रुग्णता जैसे रूढ़िवादिता, कुंठा, दूषित विचार, लैंगिक असमानता इत्यादि से मुक्त हो जाता है। अनुसंधानकर्ता द्वारा जयशंकर प्रसाद जी के विचारों एवं जीवन का वर्णन करने के लिए गुणात्मक स्तर पर उनकी कृतियों, लेखो एवं नाटकों की सहायता ली गई है, जिनके आधार पर अनुसंधानकर्ता इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है कि जयशंकर प्रसाद जी का साहित्य के क्षेत्र एवं उसके विकास में बहुमूल्य योगदान है, जिसके फलस्वरूप हिंदी साहित्य में प्रसाद जी सदा अमर रहेंगे।

मूलशब्दः अवधारणा, राष्ट्रवाद, मौलिकता, राष्ट्र, देशप्रेम, प्रकतिवाद।

प्रस्तावना

राष्ट्रवाद शब्द यूरोप से उदित हुआ और वास्तव में राष्ट्रवाद एक अवधारणा है, एक भावना है या ये कहा जाए कि राष्ट्रवाद अपने राष्ट्र के प्रति एकता प्रेम और अपनत्व की भावना है। किसी भी देश या राज्य के भौगोलिक, सांस्कृतिक और समाज में रहने वाले नागरिकों के मन में जो प्रम, अपनत्व और एकता का भाव, सम्बन्धित भू–भाग की संस्कृति के प्रति लगाव का भाव अपने राष्ट्र के प्रति जागृत होता है या बना रहता है वही राष्ट्रवाद है। डॉ. सुधीन्द्र के अनुसार, ''भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जन–गण की राजनीति एकता और जन–संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता–तीनों के समुच्चय का नाम राष्ट्र है। भूमि राष्ट्र का कलेवर है, जन उसका प्राण है और संस्कृति उसका मानस है।''[1] साहित्य और समाज के बीच घनिष्ठ संबंध है, दोनों एक दूसरे से प्रभावित और विकसित हैं। साहित्य का समाज से अलग कोई अस्तित्व नहीं होता, लेखक अपने समय और समाज का प्रतिनिधि होता है, अपने समय के वातावरण में घूम रहे विचारों को पकड़कर लेखक इसे एक नया रूप देते हैं और अपने लेखन में स्पष्ट भी करते हैं। साहित्यकार समाज की पुकार है। स्थिति के अनुसार लेखक जीवन और समाज को अपने कार्यों में चित्रित करता है, समाज के माध्यम से ही व्यक्ति के जीवन का मूल्यांकन और प्रमाणित होता है और इसलिए एक सुखी और मुक्त मानव समाज का महत्व रंगीन चित्रण है। हिंदी साहित्य में, राष्ट्र और राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व जयशंकर प्रसाद कथा लेखन में देखा जा सकता है उन्होंने अपने लेखन में राष्ट और राष्टवाद बड़ी सहजता के साथ प्रस्तुत किया है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए चेतना प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में विद्यमान है। उनका कहना था कि सामाजिक समरसता और राष्ट्रीयता के लिए यह तीन कारण तो निश्चित रूप से बाधक हैं –– सांप्रदायिकता की भावना, प्रादेशिकता के तनाव और लैंगिक असमानता। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रसाद के नाटकों में स्वतंत्रता के लिए चेतना केवल देश को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त करने की चेतना तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसमें समाज को रुग्ण करने वाली अनेक रूढ़ियों, कुंठाओं और दूषित विचारों से मुक्ति की चेतना भी निहित है। जिन्होंने समाज और जीवन की सहज गति को अवरुद्ध कर रखा है।

[1] डॉ. सुधीन्द्र : हिन्दी कविता के युगान्तर, पृष्ठ 164–167

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य जयशंकर प्रसाद के विशेष संदर्भ में राष्ट्र और राष्ट्रवाद की अवधारणा के बारे में उनके विचारों और अवधारणाओं का वर्णन करने के लिए गुणात्मक स्तर के माध्यम से प्राथमिक और माध्यमिक प्रदत का विश्लेषण करना है। जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इस अध्ययन के उद्देश्य को पूरा करने से संबंधित हैं और निम्नानुसार सूचीबद्ध हैं:

- राष्ट्र और राष्ट्रवाद अवधारणा को परिभाषित करना।
- जयशंकर प्रसाद का परिचय और उनके कथा लेखन को उजागर करना।
- जयशंकर प्रसाद के विशेष संदर्भ में राष्ट्र और राष्ट्रवाद की अवधारणा का वर्णन करना।
- जयशंकर प्रसाद के नाटकों में स्वतंत्रता की अवधारणा का वर्णन करना।

जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय

छायावाद के चार बड़े स्तंभ में प्रथम स्थान जयशंकर प्रसाद का है। जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी संवत 1946 अर्थात 30 जनवरी सन 1889 को हुआ था। काशी अर्थात वाराणसी के गोवर्धन सराय मोहल्ले में इनका जन्म हुआ। इनके पिता देवी प्रसाद और माताजी का नाम मुन्नी देवी था। इनका बचपन बड़े लाड प्यार और वैभव में व्यतीत हुआ। इनके दादा शिवरत्न साहू बड़े दानी और उदार व्यापारी थे और वे ''सुंघनी साहू'' के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रसाद जी की गली इन्हीं के नाम से 'सुंघनी साहू' की गली कहलाती थी । 5 वर्ष की अवस्था में संस्कार संपन्न कराने के लिए प्रसाद विंध्याचल और जौनपुर ले जाए गए । वहां की प्रकृति के उन्मुक्त सौंदर्य ने उनकी शैशवकालीन स्मृतियों पर अपनी छाया डाल दी । सुंदर पर्वत श्रेणियां, बहते हुए झरने, प्रकृति का नव नव रूप सभी ने उनके हृदय में कुतूहल और जिज्ञासा का भाव भर दिया। प्रकृति का प्रथम दर्शन आगे चलकर मानवीय भावनाओं से उन्हें जोड़े रहा। आरंभ में प्रसाद के मस्तिष्क पर इन्ही प्राकृतिक स्मृतियों का प्रभाव पड़ा। प्रकृति के अनन्य उपासक प्रसाद पहाड़ी झरने के एकांत कुलीन पर बैठ आकाश की ओर देखकर तरह–तरह की कल्पनाएं करते थे। इस काया की सुंदर सुखद स्मृति की अमिट छाप हृदय में बनी रही जो बाद में *झरना* और *कामायनी* लिखने में सहायक निकली । प्रसाद जी को बचपन में ही देश भ्रमण करने का अवसर मिल गया था। 9 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने चित्रकूट, नैमिषारण्य, मथुरा, ओमकारेश्वर क्षेत्र और उज्जैन तक का पर्यटन कर लिया था। चित्रकूट की पर्वतोय शोभा, नैमिषारण्य का निर्जन वन, मथुरा की वनस्थली तथा अन्य क्षेत्रों के मनोरम दृश्य पर वे अवश्य रीझ उठे होंगे । इसी समय उन्होंने *कलाधर* उपनाम से काव्य–सृजन आरम्भ किया।

जयशंकर प्रसाद एक असाधारण व्यक्तित्व संपन्न पुरुष थे। वे अधिक ऊंचे न थे, किंतु उनका पुष्ट और सुगठित शरीर था। गोरे मुख पर मुस्कान प्रायः सदैव खेला करती थी। मित्र मंडली में उनके समक्ष अनावश्यक गंभीरता और दिखावट तो रह ही नहीं सकती थी । प्रसाद जी मित्रों का स्वागत बड़ी आकर्षक और आत्मीय नेत्र गति से करते थे।

जयशंकर प्रसाद ने भारतीय पुराणों मं बिखरी पड़ी ज्ञानवर्धक व आनददायी कथाओं को बड़ी ही रोचकता से पढ़ा और समझने का प्रयास भी करते रहे। आरंभ में प्रसाद जी की शिक्षा–दीक्षा घर पर ही हुई । पिता ने घर पर ही संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी और फरसी आदि भाषाओं के पढ़ाने की व्यवस्था कर दी थी। प्रसाद जी के साहित्यिक जीवन का आरंभ एक कवि के रूप में हुआ। उनके आरंभिक पदों में अतीत की सुखद स्मृतियों की एक हल्के विषाद से भरी प्रतिक्रिया दिखाई दी। *चित्रधारा* और *कानन–कुसुम* में छाया संकेतों के इन्हीं दैवी भावनाओं का आभास मिलता है और *झरना* में उनकी वेदना का चित्र भी दिखाई देता है। *आंसू* में कवि का यह व्यक्तिक पक्ष पूरी तरह उभर आया है, परंतु इसी के साथ कवि की प्रभावशाली दार्शनिकता भी दिखायी देती है। उनके दो–चार गीतों में अतीत की मनोरम स्मृतियां भी आई है। *कामायनी* जयशंकर प्रसाद जी के कृतित्व का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है। उसमें सर्वांग पूर्ण जीवन–दर्शन, नारी–पुरुष का संपूर्ण चित्र और नई परिस्थितियों का व्यापक निरूपण है। प्रसाद जी ने नाट्य क्षेत्र में नाटक को नए चरित्र, नई घटनाएं, नया ऐतिहासिक देशकाल, नया आलाप–संलाप दिया। हिंदी नाटकों में नया युग–परिवर्तन, जीवन–समस्याओं और संघर्षों की योजना उनमें इतिहास की पाबंदी के भीतर हुई है पूर्ण स्वतंत्रता के साथ नहीं । इस दृष्टि से प्रसाद के सभी नाटक उनके *कामायनी* काव्य की भांति पूर्ण निर्माणात्मक और मौलिकता लेकर नहीं आए हैं। संवादों की दृष्टि से भी प्रसाद जी श्रष्ठता लिए हुए हैं। उन्होंने कुल 13 नाटक लिखे । जयशंकर प्रसाद की कहानियां कल्पना प्रधान हैं और प्राकृतिक वातावरण का बड़ा सुंदर उपयोग करती हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में प्रकृति के खुले सौंदर्य की छाया दिखाई देती है। उनकी कहानियों की भाषा सरल–स्वाभाविक और प्रभावशाली है। प्रसाद की सभी 72 कहानियों में सांस्कृतिक और भावनात्मक रचना की दृष्टि अनुपम है। पुरस्कार, आकाशदीप, गुंडा, ममता, सालवती और बिसाती आदि उनकी उत्कृष्ट कहानियां हैं।

प्रसाद के उपन्यास भी मध्यमवर्गीय सामाजिक समस्याओं, व्यवहारों और परिस्थितियों को लेकर आरंभ हुए थे। *कंकाल* उनका प्रथम उपन्यास विचार प्रधान है। उसमें प्रसाद जी ने उच्च जातीयता और अभिजात्य की भावनाओं पर एक बड़ा प्रश्न चिन्ह लगाया है । *तितली* उपन्यास की प्रमुख पात्र किसान–बालिका है, वह स्वल्प शिक्षित किंतु महान अध्यवसाय लड़की है। उसके चित्र द्वारा प्रसाद जी ने ग्रामीण परिस्थितियों में नया उत्साह भरने की चेष्टा की है । प्रसाद का तीसरा उपन्यास इरावती ऐतिहासिक आधार पर लिखा जा रहा था, उसका जितना अंश लिखा गया, उतने से ही उसकी एक श्रेष्ठ कृति होने का प्रमाण मिलता है। किंतु प्रसाद जी की असामयिक मृत्यु से उनकी यह कृति अधूरी रह गई। जयशंकर प्रसाद का निधन 15 नवंबर सन 1937 को हो गया। परंतु उनके इस जीवन–काल में उनकी कीर्ति लेश मात्र भी मलिन नहीं हुई थी। जयशंकर प्रसाद की समस्त रचनाओं को देखने पर यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि वे एक प्रतिभा संपन्न साहित्यकार तो थे ही बड़े मनस्वी और

चिंतनशील लेखक भी थे। उनकी रचनाएं क्रमशः प्रगाढ़ होती गईं , जो उनके व्यक्तित्व के विकास की परिचायक हैं। जयशंकर प्रसाद ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में कुछ निबंध भी लिखे, जो उनके साहित्यिक और शास्त्रीय ज्ञान तथा अंतदृष्टि का प्रमाण देते हैं। उनकी अंतिम कृतियों को देखने से यह लक्षित होता है, कि उनकी प्रतिभा लेश मात्र भी कुंठित नहीं हुई थी और उनका मानस भंडार अनेक सुंदर और मूल्यवान रत्नों की भेंट भारती के चरणों में समर्पित करने को तैयारी कर रहा था।

राष्ट्र और राष्ट्रवाद की अवधारणा

वास्तव में ये भाव सम्पूर्ण जगत में प्रत्येक देश के नागरिकों/निवासियों में विद्यमान रहते हैं। राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक जगत में राजनीतिक पुनर्जागरण का परिणाम है। कबायली वफ़ादारी और क्षेत्रीय अधिकार की अन्तर्निहित भावनाओं का विकसित रूप ही राष्ट्रवाद है। एक सहज प्रक्रिया के अन्तर्गत ही कबीले राज्य में विकसित व गठित हुए। कबीलों का राष्ट्र के रूप में विकसित हो जाना या गठित हो जाना सहज प्रक्रिया हो सकती है। राष्ट्रीय बोध के समान रीति–रिवाज, एक संस्कृति, परम्परा, इतिहास और भाषा में कुछ एकता व अपनत्व की उपस्थिति अति आवश्यक होती है। जिस संगठन को राष्ट्र माना जाए, वह एक या एक से अधिक राज्यों में या प्रान्तों में बंटा हो सकता है। इसके विपरीत राष्ट्रीय माने जाने वाले कई संगठन एक ही राज्य में भी हो सकते हैं। इस बात का सटीक उदाहरण पहला तो यह है कि–रोमानियाई लोग रोमानिया कामनवेल्थ और इन्डिपेंडेट राज्यों के मोल्डविया गणराज्य में बंटे हुए हैं। दूसरा उदाहरण सन् 1991 के प्रारम्भ तक यूगोस्लाविया है, जहाँ सर्ब, क्रोएट, स्लोवेन और मैसोडोनियाई मूल के लोग एक राष्ट्र–राज्य के निर्माता बने।

वर्तमान समय में राष्ट्र का अर्थ मूलतः राष्ट्र–राज्य माना जाने लगा। राष्ट्र का राष्ट्र–राज्य के रूप में विकास यूरोप की एक विशेष परिस्थिति में हुआ था। यूरोप में 15वीं शताब्दी तक कुछ परिस्थितियाँ ऐसी बनीं, जिनसे राष्ट्र–राज्य के विकास को गति मिली। अमेरिका का अपनी अस्मिता को बचाए रखना, राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को राष्ट्र की समृद्धि का आधार समझना, रोमन, कैथोलिक धर्म की जगह ईसाई धर्म का विकास करना, भाषाई एकता पर बल देना और राष्ट्रीय हित में युद्ध के लिए भी तत्पर रहना। प्रथम और द्वितीय विश्व–युद्ध बनते राष्ट्र–राज्यों के लिए जहाँ एक प्रबल आधार बने तो वहीं कुछ राष्ट्र–राज्यों के विकास में भी सहायक सिद्ध हुए। वास्तव में दोनों विश्व–युद्धों के कारण घोर नर–संहार और प्रलयंकारी विध्वंस के अनुभवों व परमाणु हथियारों द्वारा संसार के विनाश के अंदेशों ने औद्योगिक राष्ट्रों को प्रतिद्वंदिता को एक अलग ही रूप दे दिया। इससे विश्व भर में साम्राज्यवाद का विस्तार व प्रसार हुआ। साम्राज्यवाद के कारण परतंत्र देशों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास अपनी स्वाधीनता के लिए हुआ। इस तरह साम्राज्यवाद के विरोध में साम्राज्य–विरोधी राष्ट्रीयता की भावना का जन्म हुआ और राष्ट्रीय–स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुए। जब स्वाधीनता की भावना जागृत हुई, तब इन राज्यों में स्वाधीनता के लिए सशक्त समूह या दल गठित हुए और उन्हीं में पहले राष्ट्रीयता के भाव जगे। फिर धीरे–धीरे यही राष्ट्रवादी विचार–धारा एक से दूसरे में, दूसरे से तीसरे मं फैलती गई।

राष्ट्र शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आ रहा है। विश्व के प्राचीनतम वाङ्मय वेदों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है इसके साक्ष्य मिलते हैं। वैदिक वाङ्मय के आदि ग्रंथ ऋग्वेद में अभिषेक के पश्चात् राजा से उसके कल्याण अर्थात् राष्ट्र के कल्याण व राष्ट्र के नष्ट न होने की कामना की गई है–

''आ त्वाहार्षमन्रेधि ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वांछन्तु मा त्वद्राष्टमधि भृशत्।।''[2]

प्रजा राजा से पर्वत के समान अविचल होकर राज्य करने तथा इन्द्र के समान निष्चल होकर राष्ट्र की रक्षा करने की आकांक्षा करती है–

''इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः।
इन्द्रा इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय।।''[3]

राष्ट्र की सुरक्षा के लिए वरूण, ब्रहस्पति, इन्द्र और अग्नि दवताओं की वंदना की गई है–

''ध्रुवं ते राजा वरूणो ध्रुव देवो ब्रहस्पतिः।
ध्रुव ते इन्द्रश्चाग्निश्चय राष्ट्रं धारयतांध्रुवम्।।''[4]

[2] ऋग्वेद 10 : 171 : 1

[3] ऋग्वेद, 10 : 173 : 2

[4] ऋग्वेद, 10 : 173 : 5

यजुर्वेद में भी राजा के द्वारा अभिषेक के अवसर पर –

''राष्ट्रं में देहि''[5]

और

''राष्ट्रदा राष्ट्रं में दत्त''[6]

कहकर राष्ट्र प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा व्यक्त की गई है।

अथर्ववेद में राष्ट्र–रक्षा के निमित्त राजा के लिए ब्रहमचर्य के पालन की आवश्यकता पर बल दिया गया है–

''ब्रहमचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।''[7]

व्यतुत्पत्ति के अनुसार राष्ट्र शब्द का अर्थ ये हो सकता है– ''जिस विशिष्ट भू–भाग के मनुष्य एक विशिष्ट भाषा द्वारा दैनन्दिन आचार–विचार–व्यवहार सम्पन्न करते हैं, वह स्थल विशेष ही राष्ट्र है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्र शब्द का प्रयोग राज्य, जनसमुदाय, प्रजा, भाषा, भूभाग आदि पर बल देते हुए अनेक अर्थों में किया गया है। ये सभी राष्ट्र के अंग है। 'राष्ट' शब्द का आंग्ल पर्यायवाची शब्द NATION है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के NATUS शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– जन्म या प्रजाति।''[8]

राष्ट्र शब्द को कुछ विद्वानों ने अपने मतानुसार परिभाषित भी किया भी किया है– बर्गेस के अनुसार, ''राष्ट्र वह जन–समुदाय है, जो एक निश्चित भू–भाग अथवा भौगोलिक प्रदेश में निवास करता है तथा इसकी अपनी एक सामान्य भाषा, साहित्य, आचार–विचार और विधि–निषेध की परम्परा है।''[9]

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''भूमि–भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।''[10]

''एक राष्ट्र एक बार में अजनबियों का एक उद्देश्यपूर्ण अमूर्त समाज होता है, जो आमतौर पर एक राज्य से जुड़ा होता है और एक विषयगत रूप से सन्निहित समुदाय होता है जिसके सदस्य स्वयं को हमवतन के एकीकृत समूह के रूप में अनुभव करते हैं।''[11]

वर्तमान में राष्ट्रवाद एक आन्दोलन के रूप में जाना जाता है। राष्ट्रवाद के अर्थ में लोग अपनी मातृभूमि, अपने माता–पिता की रस्में या परम्पराएं अपने क्षेत्र आदि से जुड़े रहने और इनमें यथासंभव उन्नति करने या इनके प्रति प्रेम, अपनत्व को ही राष्ट्रवाद समझते थे, किन्तु 18वीं शताब्दी के अन्त तक आते–आते आखिरकार राष्ट्रवाद सार्वजनिक और निजी जीवन को ढालने वाली आमतौर पर मान्यता प्राप्त भावना के रूप में विकसित हुआ। राष्ट्रवाद विश्व भर में बहुत पुराना माना जाता है। कभी–कभी कुछ स्थानों पर राष्ट्रवाद को राजनीतिक व्यवहार का एक स्थाई कारक समझा जाता है। वास्तव में अमेरिका और फ्रांसीसी क्रान्तियों को राष्ट्रवाद की पहली शक्तिशाली अभिव्यक्ति माना जा सकता है। राष्ट्रवाद अमेरिका के नवीन देशों में प्रवेश करने के बाद 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मध्य यूरोप में, वहाँ से 19वीं शताब्दी के मध्य तक पूर्वी और दक्षिण–पूर्वी यूरोप में फैल गया। 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रवाद पनपने लगा। अतः 19वीं सदी को यूरोप में राष्ट्रवाद का युग कहा गया, जबकि 20वीं सदी में सम्पूर्ण एशिया और अफ्रीका में शक्तिशाली राष्ट्रीय आन्दोलनों के उदय और संघर्ष के कारण राष्ट्रवाद फैलता गया।

पूर्वीय राष्ट्रीयता उन व्यक्तियों में पनपी जो ऐसी सभ्यता की ओर खींच लाये गये हैं और जिनके पूर्वजों की संस्कृति ने इस नवीन सभ्यता की प्रभावशाली शर्तों को अपने लिए अनुकूलित नहीं किया। उन व्यक्तियों ने अपने राष्ट्रों के पिछड़ेपन का मूल्याकंन पश्चिमी यूरोप के विकसित देशों के द्वारा निर्धारित कुछ निश्चित विश्वव्यापी मूल्यों के आधार पर किया है। किन्तु ये मूल्य वास्तविक रूप में तो पराई संस्कृति से आये हैं और राष्ट्र की पारम्परिक संस्कृति इतनी ठोस नहीं कि विकास के आधार तलों को छुआ जा सके। पूर्व की राष्ट्रीयता के साथ एक ऐसा प्रयास भी जुड़ा रहा, जो परिवर्तन के लिए राष्ट्र को सांस्कृतिक रूप से पुनःनिर्मित कर सके। किन्तु ये उस परायी संस्कृति की नकल मात्र से सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में एक राष्ट्र अपनी विशेष अस्मिता ही खो देगा।

इसी प्रकार की दुविधा राष्ट्रवाद के उदारवादी इतिहास में दृष्टिगोचर होती है– हांस कोन के लेखन में भी।[12] इसी तरह का इतिहास लेखन राष्ट्रवाद को स्वतंत्रता की गाथा के रूप में प्रदर्शित करता है। इसकी उत्पत्ति सार्वभौमिक इतिहास की अवधारणा के जन्म के साथ ही हुइ है। ऐसे राष्ट्रवाद का विकास उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का ही एक अंग है, जो औद्योगिकरण

---

[5] यजुर्वेद, 10 : 2

[6] यजुर्वेद 10 : 3

[7] अथर्ववेद, 5 : 1 : 7

[8] कम्पटन्स पिक्चर्ड इन्साइक्लोपीडिया, खण्ड–10, पृष्ठ 15

[9] जे. डब्लू. बगेस : पॉलिटिकल साइंस एण्ड कंन्स्टीट्यूनल लॉ, खण्ड – 1, पृष्ठ 1

[10] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल : राष्ट्र का स्वरूप, राष्ट्र धर्म (प्रवेशांक) पृष्ठ 48

[11] जेम्स पॉल– राष्ट्र निर्माण : सार समुदाय के सिद्धान्त की ओर, पृष्ठ 34

[12] हांसकोन, ''द आइडिया ऑफ नैशनलिज़्म, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1994

और लोकतंत्र के उदय का आधार है। अतः राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता और विकास के लिए विश्वव्यापी आग्रह का राजनीतिक अर्थों में रूपान्तरण और आत्मसातीकरण करता है। स्वतंत्रता की उसी गाथा के अविच्छिन्न हिस्से के रूप में राष्ट्रवाद को विवेकपूर्ण और उच्च राजनीतिक लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए युक्तिमूलक सैद्धान्तिक ढ़ाँचे के रूप में परिभाषित किया जा सकता है किन्तु अर्वाचीन इतिहास में राष्ट्रवाद की अवस्थिति ऐसी कतई नहीं रही है। यह अब तक के सर्वाधिक संहारकारी युद्ध का कारण रहा है।[13]

अतः अंत में यहाँ एक और यह प्रश्न उठता है कि गैर–यूरोपियन विश्व में जो राष्ट्रवाद उदित हुआ, उसका स्वरूप कैसा था? प्रश्न तो अत्यन्त ही विचारणीय है, किन्तु यहाँ राष्ट्रवाद ऐतिहासिक दृष्टि से उपनिशवाद के प्रश्न से सम्बन्धित है। राष्ट्रीय अस्मिता पर बल वस्तुतः उपनिवेशवादी शोषण के विरूद्ध संघर्ष के रूप में था। उपनिवेशवादियों द्वारा जो अत्याचार, अनाचार व शोषण किया जा रहा था, उसके विरूद्ध उठी आवाज के रूप में उठी चिंगारी ने राष्ट्रवाद का रूप लिया।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो पाते हैं कि तीन विशिष्ट प्रकार के राष्ट्रवाद सामने आते हैं– प्रथम अमेरिका में उभरा राष्ट्रवाद। ये राष्ट्रवाद उस वर्ग की अपेक्षाओं पर टिका था, जिनके आर्थिक उद्देश्य महानगरों के विरूद्ध थे। कुछ विचारकों के अनुसार, यह राष्ट्रवाद अधूरा ही रहा क्योंकि इसमें भाषाई एकता का अभाव था। द्वितीय प्रकार का राष्ट्रवाद यूरोप का भाषायी राष्ट्रवाद था, जो स्वतंत्र राष्ट्रीय राज्य का प्रतिरूप भी बनकर सामने आया और तीसरे प्रकार का राष्ट्रवाद – राजकीय राष्ट्रवाद से उत्पन्न हुआ, जो रूस में दिखाई देता है। राष्ट्रवाद के ये सभी रूप–स्वरूप बीसवीं सदी में द्वितीय विश्व–युद्ध के पश्चात् तृतीय विश्व के राष्ट्रवाद के समक्ष विद्यमान थे।

जयशंकर प्रसाद जी के विचार में राष्ट्र और राष्ट्रवाद की अवधारणा

जयशंकर प्रसाद का समय 100 वर्षों से अधिक तक परतंत्र भारत की मुक्ति हेतु संघर्ष का समय था। भारतीय संस्कृति के मान बिंदुओं को घर्षित कर भारतीय जनमानस को उसके गौरवशाली अतीत से काटने का जो कुचक्र विदेशी आक्रांताओं द्वारा दीर्घकाल से चलाया जा रहा था, स्वतंत्रता संघर्ष के साथ उस कुचक्र के प्रभाव से बाहर निकलने की बेचौनी भी प्रसाद कालीन समाज और साहित्य में मुखर होने लगी थी। आधुनिक युग के आरंभ के साथ ही प्रखर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का प्रसार संपूर्ण भारत में होना शुरू हो गया, जिसे नवजागरण काल की संज्ञा दी गई । यह वस्तुतः हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की तलाश ही थी, जो प्रसाद युगीन साहित्य में अपने चरम पर पहुंचती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद जयशंकर प्रसाद अपने नाटकों में एक जीवंत सांस्कृतिक बोध लेकर उपस्थित होते हैं । प्रसाद जी का महान योगदान इसमें यह है कि उन्होंने अपने नाटकों में एक भिन्न प्रकार की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का अन्वेषण किया।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए चेतना प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में विद्यमान है। उनका कहना था कि सामाजिक समरसता और राष्ट्रीयता के लिए यह तीन कारण तो निश्चित रूप से बाधक हैं –– सांप्रदायिकता की भावना, प्रादेशिकता के तनाव और लैंगिक असमानता । अपने प्रधान नाटकों में उन्होंने इन्हीं का समाधान देने का प्रयत्न किया। उनके नाटकों में राजनीतिक दासता से मुक्ति पाने का प्रयास दिखाई देता है । प्रसाद सांकेतिक भाषा के माध्यम से विदेशी शासन की पक्षपात–पूर्ण कुटिल और दमनकारी नीतियों से मुक्ति की प्रेरणा देते हैं। जयशंकर प्रसाद ने अतीत काल के उन वीरता पूर्ण चरित्रों का चयन किया, जिनमं राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए आत्म–बलिदान की भावना कूट–कूट कर भरी थी। ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से उन्होंने नवजागरण के कार्यभारों को अपने नाटक में स्थान दिया और तत्कालीन ज्वलंत समस्याओं के लिए समाधान प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया जिनमें स्वतंत्रता के लिए चेतना प्रमुख थे।

जयशंकर प्रसाद का पहला नाटक *प्रायश्चित'* जो 1914 में प्रकाशित हुआ,उसमें देश– प्रेम और राष्ट्र–प्रेम को मूल्य मानकर देशद्रोह का प्रायश्चित आत्मवध माना गया है। जयशंकर प्रसाद का गीतिनाट्य *करुणालय* भी राष्ट्रवाद को उजागर करता है। इसमें कहा गया एक संवाद ––

''देखेंगे परिवर्तनशील प्रकृति को,
घूमेंगे बस देश–देश स्वाधीन हों,''

साथ ही इस नाटक के माध्यम से प्रसाद ने उस आधुनिकता को भी निंदनीय कहा है, जिसमें मनुष्य आवश्यकताओं का दास होकर प्रलोभनां के लिए मनुष्यता से गिर जाता है। जयशंकर प्रसाद का नाटक *राज्यश्री'* पहला ऐतिहासिक–रूपक माना जाता है। इसमें वे मानव मन को मथने वाली अंतर्वासनाओं, आशंकाओं और वेदनाओं तथा सामाजिक जीवन में विद्यमान जाति–वर्ण, ऊंच–नीच, छुआ–छूत के आचार–विचार से उत्पन्न दमित भावनाओं और आक्रोश को नाटक में बहुत कुशलता से प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद का एक नाटक *विशाख* है, इस नाटक में भी अन्याय एवं अत्याचारी शासन का व्यापक चित्र है । इसके संवाद अतीत और तात्कालिक वर्तमान दोनों की आलोचना करते हैं। इस पर स्वतंत्रता हेतु आंदोलन और गांधीवादी विचारधारा का संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता के अनुरूप ही है और साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों की प्रेरक शक्ति भी।

1922 में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद का नाटक *अजातशत्रु* राज्य–शक्ति का विरोध है । नाटक के अंत में अजातशत्रु बिंबिसार से कहता है–

[13] पार्थ चटर्जी, नैशनलिस्ट थॉट एण्ड दी कालोनियल वर्ल्ड : एड्राइवेटिव डिस्कोर्स? (युनाइटेड नेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस)

''मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी।
मिला था केवल जंगलीपन की स्वतंत्रता का अभिमान।
अपने को विश्व भर में स्वतंत्र जीव समझने का झूठा आत्मसम्मान।''

1925 में प्रकाशित *जनमेजय का नागयज्ञ* नाटक समता, न्याय और मानव मात्र के बंधुत्व आदि मूल्यों की स्थापना करता है। उसमें कहा गया एक गीत––

''क्या सुना नहीं कुछ अभी पड़े सोते हो,
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो,
प्रतिहिंसा का विष तुम्हें नहीं चढ़ता क्या,
इतने शीतल हो वेग नहीं बढ़ता क्या,
जब दर्ज भरा अरि चढ़ा चला आता है,
तब भी तुम में आवेश नहीं आता है,
जातीय मान के शव पर क्यों रोते हो,
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो।।''

प्रसाद युग जागरण का काल था। अनेक रचनाओं में जागरण गीतों के माध्यम से रचनाकार जनता में वीरता और साहस का संचार कर रहे थे। 1928 में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद का नाटक *स्कन्दगुप्त* देश– प्रेम और राष्ट्रीयता का नाटक है । आज के धर्म संकट के संदर्भ में भी इसकी बड़ी सार्थकता है। दूर तक विस्तृत गुप्त साम्राज्य को विघटित करने वाली शक्तियों और हमारी आज की परिस्थितियों के बीच एक गहरे तल पर जाकर विचित्र समानता है।

कामना उनका एक ऐसा नाटक है जो व्यापक अर्थ में पराधीनता– समीक्षा को प्रस्तुत करता है। इसकी शैली प्रबुद्ध चंद्रोदय और भारत–दुर्दशा की तरह ही है। इसमें संकेत द्वारा औपनिवेशिक सत्ता के माध्यम से किसी देश को गुलाम बनाने की कथा का निरूपण है।

1931 में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद का नाटक *चंद्रगुप्त* प्रसिद्ध व अत्यधिक प्रशंसनीय नाटक है। इसमें जयशंकर प्रसाद का मुख्य उद्देश्य पराधीनता से मुक्ति के लिए प्रदेशों, क्षेत्रों, जातियों और धर्मों आदि की निजताओं, स्वतंत्रता के लिए कामनाओं और अहर्ताओं को भुलाकर विशाल आर्यावर्त को स्वाधीन और अजेय बनाना है। इस नाटक में अलका और कार्नेलिया के गीत प्रत्येक नागरिक के मन में अपनी राष्ट्रीय पहचान का भाव पैदा करते हैं–––

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़– प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो!'

असंख्य कीर्ति–रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह–सी
सपूत मातृभूमि के– रुको न शूर साहसी!
अराति सैन्य सिंधु में, सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो – बढ़े चलो, बढ़े चलो!

1933 में प्रकाशित उनका अंतिम नाटक *ध्रुवस्वामिनी* स्वतंत्रता के अन्य पहलुओं को भी विमर्श का विषय बनाता है। इस नाटक का मूल विषय स्त्री की स्वतंत्रता के साथ ही व्यवस्था मात्र में परिवर्तन की मांग भी है। नाटक का आरंभ ही स्त्री–पुरुष की असंतुलित स्थिति के चित्रण के साथ होता है।

उपसंहार

उपर्युक्त प्रपत्र का संपूर्ण अध्ययन करने के पश्चात यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि प्रसाद जी छायावादी साहित्य के प्रमुख स्तंभ थे। उनके द्वारा साहित्य के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिए गए हैं जैसे झरना एवं *कामायनी* में उन्होंने प्रकृति के सौंदर्य का अविस्मरणीय चित्रण किया है। प्रसाद जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से मध्यमवर्गीय लोगों की सामाजिक समस्याओं, व्यवहारों एवं परिस्थितियों का बड़ा ही भावनात्मक चित्रण किया है एवं उनकी परिस्थितियों में एक नया उत्साह भरने की चेष्टा की है। राष्ट्रवाद के विषय को भी जयशंकर प्रसाद जी ने बड़े ही सरल एवं सहज स्वरूप में अपनी कथाओं में वर्णित किया है, उनके अनुसार समाज में सामाजिक समरसता और राष्ट्रीयता लाने के लिए यह है अति आवश्यक है कि सांप्रदायिकता की भावना, प्रादेशिकता के तनाव और लैंगिक असमानता का त्याग किया जाए। जयशंकर प्रसाद जी का काल जागरणकाल का युग भी माना जाता है। उनके अनेक रचनाओं में जागरण गीत देखने को मिलते हैं, जिसके माध्यम से उन्होंने आम लोगों में दृढ़ता एवं साहस का रस भरने में सक्षमता प्राप्त की है। उनकी रचनाओं में देश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की झलक सदैव स्पष्ट रूप से देखने को मिली है। अतः अंत में यह कहा जा सकता है कि जयशंकर प्रसाद जी हिंदी गद्य के एक आधार स्तंभ

के रूप में उभरे थे एवं उनके जान के पश्चात उनकी रचनाएं हिंदी गद्य का आधार स्तंभ बनी रहेंगी, जो जयशंकर प्रसाद जी का स्वर्णिम योगदान सदैव स्मरण कराती रहेगी।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. सुधीन्द्र : हिन्दी कविता के युगान्तर, पृष्ठ 164–167

2. ऋग्वेद 10 : 171 : 1

3. ऋग्वेद, 10 : 173 : 2

3. ऋग्वेद, 10 : 173 : 5

4. यजुर्वेद, 10 : 2

5. यजुर्वेद 10 : 3

6. अथर्ववेद, 5 : 1 : 7

7. कम्पटन्स पिक्चर्ड इन्साइक्लोपीडिया, खण्ड–10, पृष्ठ 15

8. जे. डब्लू. बगेस : पॉलिटिकल साइंस एण्ड कंन्स्टीट्यूनल लॉ, खण्ड – 1, पृष्ठ 1

9. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल : राष्ट्र का स्वरूप, राष्ट्र धर्म (प्रवेशांक) पृष्ठ 48

10. जेम्स पॉल– राष्ट्र निर्माण : सार समुदाय के सिद्धान्त की ओर, पृष्ठ 34

11. हांसकोन, ''द आइडिया ऑफ नैशनलिज़्म, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1994

12. पार्थ चटर्जी, नैशनलिस्ट थॉट एण्ड दी कालोनियल वर्ल्ड : एड्राइवेटिव डिस्कोर्स? (युनाइटेड नेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस)